Vol.12 May'19 No.10
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

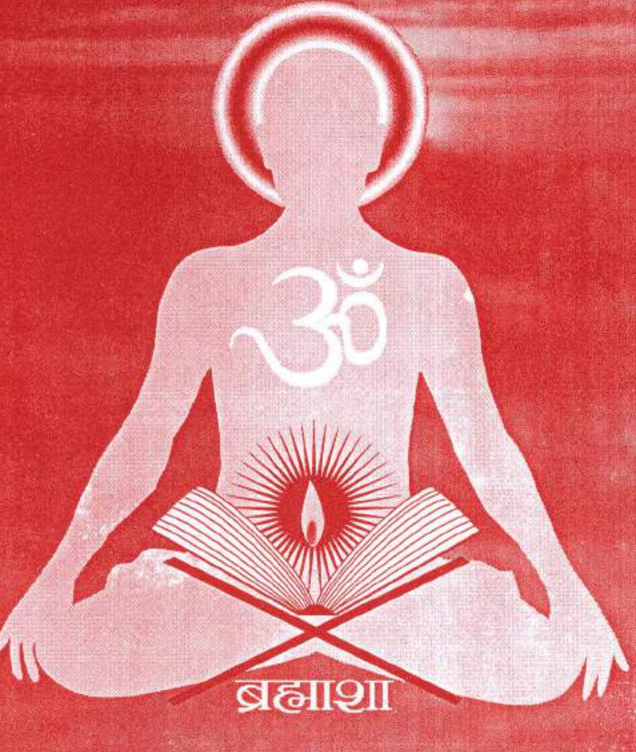

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन
C2A/58 Janakpuri, New Delhi - 110058

सत्यमेवजयतेनानृतम्

–दयाशंकर गोयल

विजय सत्य की होती है, नहीं असत्य जय पाता है।
गौरवमय इतिहास हमारा, सुयश सत्य के गाता है।।
त्रेता में दुर्नृप रावण ने जब आतंक मचाया था।
ऋषि-मुनियों के यज्ञ नष्ट कर उनको बहुत सताया था।
उनके आश्रम नष्ट-भ्रष्ट करवाता, उनका गौधन हर।
उन्हें अकारण, घोर ताड़ना देता, कर देता बेघर।।
तब उनके उद्धार हेतु कर उठा धनुर्धर रघुवर ने।
"निशिचर हीन करूँ मही" का व्रत धारण किया उस नरवर ने।।
सैन्य शक्ति कम थी यद्यपि, पर सत्य न्याय का सम्बल था।
उन्हें मिला सुग्रीव, नील, नल, हनुमत आदिन का बल था।।
बिनु प्रयास के इन सबका बल मिलना यह दर्शाता है।
विजय सत्य की करने के अवसर खुद ईश जुटाता है।।
सीता हरण बना था कारण प्रबल नाश का रावण के।
ये भी था संयोग अचानक बना पक्ष में रघुवर के।।
इसके पीछे 'न्याय व्यवस्था' रत थी ईश्वर पावन की।
"सत्यमेवजयतेनानृतम्" के वचनामृत के रक्षण की।।
बढ़ा राम का दल, रावण को दल बल, कुटुम्ब सहित मारा।
सत्य धर्म की रक्षा की, अन्याय-अधर्म मिटा सारा।।
विजय सत्य की होती है, नहीं अनृत जय पाता है।
अन्यायी, अत्याचारी मिटता, धिक्कारा जाता है।।
नहीं सहो अन्याय, अनृत को कभी न गले लगाओ।
"सत्यमेवजयतेनानृतम्" को जीवन लक्ष्य बनाओ।।
जो सत्, धर्म, न्याय पे चलता, जग उसके गुणगाता है।
'राम-विजय' का पर्व 'दशहरा'-शाश्वत नीति बताता है।।

सुदामा नगर इंदौर

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
email:deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com
Website : www.thearyasamaj.org
of Delhi Arya Pratinidhi Sabha

Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar 0124-4948597
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta *V.President*
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer

Editorial Board
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar,
Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Shri Shiv Kumar Madan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062
Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

Brahmarpan May'19 Vol. 12 No.10
बैशाख-ज्येष्ठ 2075-76 वि.संवत्

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

CONTENTS

1. सत्यमेवजयतेनानृतम्
   -दयाशंकर गोयल 2
2. संपादकीय 4
3. महार्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित जीवात्मा का स्वरूप 7
   -डॉ. रमेशदत्त आर्य
4. समानता का पाठ 13
   -जयगोपाल शर्मा
5. षड्दर्शन-परिचय 14
   -राजवीर शास्त्री
6. आर्यभाषा (हिंदी) के प्रबल समर्थक महात्मा हंसराज जी 13
   -प्रो. (डॉ.) सुन्दरलाल कथूरिया
7 भगतसिंह के विचार को ठीक से समझने की जरूरत 21
   -ओमप्रकाश दास
8. उपनिषद का सन्देश-दृढ़संकल्प बनो
   -स्व. महात्मा आनन्द स्वामी 23
9. तिब्बत में भारतीय संस्कृति और संस्कृत 28
   -डॉ. शशिबाला
10. It was Nehru, not the Chinese who declared war 33
   -Prakram Rautela

संपादकीय

सड़क दुर्घटनाएँ और हमारा दायित्व

-भारत भूषण विद्यालंकार

किसी भी समाचार-पत्र को उठाकर देख लीजिए उसके पहले ही पृष्ठ पर सड़क दुर्घटनाओं के समाचार सुर्खियों में होते हैं। इतनी दुर्घटनाएँ क्यों होती हैं और इसके लिए कौन जिम्मेदार है? यह विचार उठना स्वाभाविक है। सन् 2018 में 6274 दुर्घटनाएँ हुईं जिसमें 1604 लोगों की मृत्यु हुई। ये दुर्घटनाएँ उन लोगों की हुईं जो दुपहिया वाहन (स्कूटर या मोटर साइकिल) चला रहे थे और उन्होंने हेल्मेट नहीं पहन रखा था। हमारी सीमाओं पर आतंकी गोलाबारी से जितने लोग मारे जाते हैं उनसे कहीं अधिक लोग सड़क हादसों में मारे जाते हैं। प्रायः कार चालक भी सीट बेल्ट नहीं लगाते। इन कारणों से प्रतिदिन 177 मौतें होती हैं।

आइए, हम इन दुर्घटनाओं के कारणों की जाँच करें कि ये दुर्घटनाएँ क्यों होती हैं? और इनके लिए कौन जिम्मेदार है?

1. सड़कों का योजनाबद्ध तरीके से निर्माण न होना और वाहनों के चलने से बने गड्ढों की नियमित रूप से मरम्मत न होना एक मुख्य कारण है। हाल ही में गुरुग्राम की सड़क में एक मीटर के गड्ढे के कारण एक कार चालक की उसमें गिरने से मौत हो गई।

2. वैध ड्राइविंग लाइसेंस न होना या रिश्वत देकर दलालों से ड्राइविंग लाइसेंस प्राप्त कर लेना आम बात है। ऐसे लाइसेंस दुर्घटनाओं के मुख्य कारण हैं।

3. निर्धारित गति सीमा से अधिक रफ्तार से गाड़ी चलाने के कारण बहुत-सी दुर्घटनाएँ होती हैं। 76% दुर्घटनाएँ तेज रफ्तार और गलत दिशा में गाड़ी चलाने से होती हैं।

4. शराब पीकर गाड़ी चलाने से प्रायः ट्रक या कार चालक गाड़ी पर नियंत्रण खो देते हैं।

5. गलत साइड में गाड़ी चलाने से दूसरी दिशा से आने वाले वाहन से टक्कर हो जाना स्वाभाविक है। सोनीपत में गलत दिशा से आ रहे ट्रक के अनियंत्रित होकर स्विफ्ट कार और क्रूजर से जबरदस्त टक्कर से 12 लोगों की मौत हो गई और 8 लोग गंभीर रूप से घायल हो गए।

6. गाड़ी चलाते समय मोबाइल फ़ोन का प्रयोग करने या हेडफ़ोन लगाकर गाने सुनने से अनेक दुर्घटनाएँ होती हैं।

7. नाबालिग बच्चों द्वारा गाड़ी चलाने से होने वाली दुर्घटनाओं के लिए उनके अभिभावक (माता-पिता) जिम्मेदार हैं इसके लिए उनके विरुद्ध कार्रवाई होनी चाहिए।

8. कोहरे के कारण सड़क पर चलने वाले वाहनों को ठीक से न दिखाई देने के कारण प्रायः गाड़ियाँ एक दूसरे से टकरा जाती हैं। ऐसी ही एक घटना पश्चिमी उत्तरप्रदेश में हुई जिसमें 50 गाड़ियाँ आपस में टकरा गईं जिसमें कइयों की मौत हुई और पचासों लोग घायल हो गए।

कभी-कभी धुंध के कारण सड़क के किनारे खड़ी गाड़ियों से भी टक्कर हो जाती है। ऐसी घटनाएँ प्रायः होती रहती हैं। ऐसे अवसर पर ध्यान से धीरे गाड़ी चलाएँ।

8.अ. तमिलनाडु में हेल्मेट न पहनने तथा सीट बेल्ट न लगाने से प्रतिदिन 177 मौतें हुईं। 2017 में वहाँ हेल्मेट न होने के कारण सड़क हादसों में 36000 लोगों की मौत हुई। जबकि 2016 में यह आँकड़ा 10,135 था। यों 2013 में इन हादसों में भारत में 1,37,572 लोगों की मौत हुई जबकि 2017 में मरने वालों की संख्या 1,47,913 थी।

9. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सबसे अधिक हादसे दुपहिया और तिपहिया वाहनों के होते हैं और इनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

10. सड़क के साथ साइकिलों के लिए साइकिल ट्रैक और पैदल पथ न होने से पैदल चलने वालों की बहुत दुर्घटनाएँ होती हैं। साथ ही सड़क पर जेब्रा क्रॉसिंग भी चिह्नित होने चाहिए और उनका ठीक से अनुपालन होना चाहिए।

11. वाहन चालकों द्वारा यातायात के नियमों का पालन न करने के कारण भी बहुत से हादसे होते हैं।

12. सरकार को भी सड़कों पर सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए समुचित व्यवस्था करनी चाहिए। सड़कों पर अँधेरा न हो इसके लिए बिजली की पर्याप्त व्यवस्था आवश्यक है।

13. प्रायः देखा गया है कि जब वाहन चालकों की सड़क पर टक्कर हो जाती है तो वे घायल व्यक्ति को सड़क पर छोड़ कर भाग खड़े होते हैं। यह नैतिक अपराध है। उन्हें घायल व्यक्ति को तत्काल अस्पताल पहुँचाना चाहिए।

14. यदि दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को सरकारी या निजी अस्पताल ले जाया जाए तो अस्पताल के डॉक्टरों को तुरन्त उसका इलाज करना चाहिए। इसके संबंध में पुलिस कार्रवाई में समय बर्बाद नहीं करना चाहिए।

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती,
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो,
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम्।।

(भर्तृहरिकृत-वैराग्य शतक, श्लो. 96)

शेरनी के समान भयभीत करने वाला बुढ़ापा सामने खड़ा है, अनेक प्रकार के रोग शत्रुओं के समान शरीर पर आक्रमण कर रहे हैं, और फूटे हुए घड़े में से जैसे निरन्तर पानी रिसता रहता है, वैसे ही आयु क्षीण होती जा रही है, अहो! कितने आश्चर्य की बात है कि लोग फिर भी पाप कर्मों में लगे हुए हैं।

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित जीवात्मा का स्वरूप

-डॉ. रमेशदत्त आर्य

महर्षि दयानन्द त्रैतवादी दार्शनिक हैं। ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीन तत्त्वों को वे अनादि मानते हैं। इन तत्त्वों की न तो उत्पत्ति होती है और न ही विनाश। इन तीनों की सत्ता एक दूसरे से अलग व स्वतन्त्र है। इनमें से कोई भी अपनी सत्ता के लिए किसी पर निर्भर नहीं है। कहने का भाव यह है कि इनकी अपने आप सत्ता है। महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित जीवात्मा का स्वरूप क्या है? यहाँ संक्षेप में केवल इसी विषय की चर्चा प्रस्तुत है।

जीवात्मा की सत्ता स्वतंत्र है

महर्षि दयानन्द चार्वाक और बौद्धों की तरह न तो चेतनयुक्त शरीर को आत्मा मानते हैं और न ही रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन पंचस्कन्धों के संघात या जोड़ को। उनके मत में आत्मा की सत्ता शरीर और पंचस्कन्धों से भिन्न व स्वतन्त्र है। चेतना आत्मा का गुण हैं, जड़ शरीर का नहीं। इसी तरह जीवात्मा पंचस्कन्धों अर्थात् शरीर तथा मानसिक क्रियाओं का जोड़ या पुंज नहीं है। इनसे जीवात्मा की अलग सत्ता है। शरीर आत्मा के कर्मफल भोगने का साधन है। मानसिक क्रियाओं की भी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वे आत्मा के ही गुण हैं। यदि थोड़ी देर के लिए चेतन शरीर और पंचस्कन्धों के जोड़ या समुदाय को ही आत्मा मान लिया जाय तो इनके परिवर्तनशील होने से स्मृति (किसी घटना की याद), प्रत्यभिज्ञा (पहले कहीं देखे हुए किसी व्यक्ति या वस्तु को दुबारा देखकर पहचान लेना) और कर्मफल की व्यवस्था समाप्त हो जायेगी।

नवीन वेदान्ती 'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि ब्राह्मण ग्रंथों

के वाक्यों का अद्वैतपरक अर्थ करके, उसके आधार पर जीव और ब्रह्म की एकता सिद्ध करते हैं। महर्षि दयानन्द नवीन वेदान्तियों के इस विचार से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार ये सभी वाक्य अद्वैतवाद का समर्थन नहीं करते अपितु ब्रह्म से अलग व स्वतन्त्र जीवात्मा की सत्ता सिद्ध करते हैं कि यदि जीव ही ब्रह्म है अर्थात् जीवात्मा की पारमार्थिक सत्ता नहीं है तो जगत् में जो पाप-पुण्य हो रहे हैं उनका कर्ता और भोक्ता ब्रह्म को ही मानना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में ब्रह्म भी जीवात्मा की तरह जन्म-मरण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हठ, दुराग्रह और अविद्या आदि अनेक दोषों से ग्रसित होकर अपने अजन्मा, पवित्र और सर्वज्ञ आदि स्वाभाविक गुणों को खो बैठेगा।

रामानुज जीवात्मा की सत्ता स्वतन्त्र तो मानते हैं, किन्तु वे उसे ईश्वर पर आश्रित और सर्वथा उसके अधीन मानते हैं। कहने का भाव यह है कि रामानुज के अनुसार जीवात्मा की सत्ता ईश्वर पर निर्भर है। वह पूरी तरह से ईश्वर के सहारे है। उसकी अपने आप सत्ता नहीं है। यह मत महर्षि दयानन्द को मान्य नहीं है क्योंकि यदि जीवात्मा की सत्ता ईश्वर पर निर्भर है। उसकी अपने आप सत्ता नहीं है तो वह स्वतन्त्र नहीं है। वह ईश्वर की कठपतली मात्र है। इस प्रकार स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द के अनुसार जीवात्मा न तो चेतनायुक्त शरीर है, न परिवर्तनशील पंचस्कन्धों का समुदाय है, न ब्रह्म है और न ही अपनी सत्ता के लिए ईश्वर पर निर्भर है। अपितु उसकी सत्ता ईश्वर की तरह स्वतन्त्र है। वह अपनी सत्ता के लिए किसी का मोहताज नहीं है।

जीवात्मा अनादि है

महर्षि दयानन्द ने ईश्वर और प्रकृति की तरह जीवात्मा को भी अनादि माना है जिसका कोई आदि कारण न हो, उसे

अनादि कहते हैं। आदि का अर्थ है उत्पत्ति। जिस वस्तु की उत्पत्ति किसी कारण या चीज से होती है, वह अनादि नही हो सकती। जिस वस्तु की उत्पत्ति किसी चीज से नहीं होती वही अनादि है। जीवात्मा की उत्पत्ति किसी चीज से नहीं होती, क्योंकि इसको उत्पन्न करने वाली कोई चीज या इसका कोई आदि कारण नहीं है। इसलिए यह अनादि है। इसके विपरीत चार्वाक पृथिव्यादि से, आचार्य शंकर अविद्या से, बाइबिल और कुरआन के मतानुयायी मिट्टी और खुदा की रूह से जीवात्मा की उत्पत्ति मानते हैं। ये सभी विचार महर्षि दयानन्द को मान्य नहीं हैं, क्योंकि जीवात्मा को अनादि न मानने से कर्मफल का सिद्धान्त खण्डित हो जाता है। इसलिए महर्षि दयानन्द ने इन सभी मतों का 'सत्यार्थप्रकाश' में जमकर खण्डन किया है।

जीवात्मा नित्य है

महर्षि दयानन्द के मत में जीवात्मा अनादि होने से नित्य है। इसलिए उसके गुण, कर्म और स्वभाव भी नित्य हैं। जीवात्मा का स्वभाव पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है। सन्तानोत्पत्ति, शिल्पविद्यादि अच्छे-बुरे उसके कार्य हैं। महर्षि दयानन्द ने न्याय और वैशेषिक सूत्रों के आधार पर इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान और प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मनोगति और इन्द्रियों के विकारों को जीवात्मा का गुण एवं लक्षण बतलाया है। जब तक जीवात्मा शरीर में रहता है तभी तक वे गुण एवं लक्षण प्रकाशित रहते हैं। जब जीवात्मा शरीर छोड़कर चला जाता है तब ये गुण एवं लक्षण शरीर में नहीं रहते।

जीवात्मा का निवास स्थान

महर्षि दयानन्द के अनुसार जीवात्मा अणु रूप है। उसका निवास स्थान हृदय में है। वैदिक साहित्य में हृदय का तात्पर्य केवल लोक प्रसिद्ध वक्षस्थलीय हृदय नहीं है अपितु मस्तिष्कीय

हृदय से भी है। यहाँ पर प्रश्न उठता है कि जीवात्मा का निवास किस हृदय में है? महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का अध्ययन करने से पता चलता है कि वे जीवात्मा का निवास स्थान मस्तिष्कीय हृदय को मानते हैं।

जीवात्मा की अनेकता

महर्षि दयानन्द के मत में जीवात्मा अनेक हैं। अलग-अलग शरीरों में अलग-अलग जीव हैं, यह उनके आचार-व्यवहार और स्वभाव से सिद्ध है। आचार्य शंकर को छोड़कर प्रायः सभी भारतीय दार्शनिक महर्षि दयानन्द के इस विचार से पूर्णतया सहमत हैं। कुछ भारतीय दार्शनिक ऐसे भी हैं जो जीवात्मा को अनेक मानते हुए भी उनकी संख्या अनन्त मानते हैं। महर्षि दयानन्द जीवात्मा की संख्या अनन्त मानते हैं, क्योंकि जीवात्मा की संख्या अनन्त मानने से उनके कर्मफल, जन्म-मरण आदि अनन्त होंगे। ऐसी स्थिति में अनन्त जीवों के अनन्त कर्मफल, जन्म-मरण आदि की व्यवस्था कौन करेगा? इसलिए जीवों की संख्या अनन्त मानना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता।

सभी जीवात्मा एक समान

महर्षि दयानन्द के अनुसार बच्चे के शरीर में, जवान शरीर में, बूढ़े के शरीर में, स्त्री के शरीर में और पशु-पक्षियों के शरीर में एक ही प्रकार के जीवात्मा पाये जाते हैं। इनमें छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच आदि का कोई भेद नहीं है। हाँ, जीव जैसे कर्म करता है, उसे फल भोगने के लिए परमात्मा द्वारा वैसा ही शरीर मिलता है। ईसाई और मुसलमान मनुष्यों में तो जीवात्मा मानते हैं किन्तु पशु-पक्षियों में नहीं मानते। उनकी यह बात महर्षि दयानन्द को मान्य नहीं है क्योंकि उन्होंने न्याय और वैशेषिक सूत्रों के आधार पर जीवात्मा का जो गुण एवं लक्षण इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख, ज्ञान, प्राण आदि बतलाया है। वे सभी गुण एवं लक्षण न केवल पशु-पक्षियों में ही अपितु

चींटी-चींटे, कीट-पतंगों आदि मे भी पाये जाते हैं। इसलिए ईसाई और मुसलमानों का यह कहना है कि पशु-पक्षियों में जीवात्मा नहीं पाया जाता सरासर गलत है।

जीवात्मा अल्पज्ञ और अल्पसामर्थ्यवाला

महर्षि दयानन्द जीवात्मा को अल्पज्ञ और अल्पसामर्थ्यवाला (अल्पशक्तिवाला) मानते हैं। अल्पज्ञता और अल्पसामर्थता जीवात्मा का स्वरूप है। कोई भी पदार्थ (चीज) अपने स्वरूप को कभी नहीं छोड़ता। इसलिए जीवात्मा भी अपने स्वरूप को कभी नहीं छोड़ता। वह चाहे जितना अपना ज्ञान व सामर्थ्य (शक्ति) बढ़ाता जाये फिर भी अल्प और 'अल्पसामर्थ्ययुक्त' होने से उसका ज्ञान व सामर्थ्य सीमित ही रहेगा। जीवात्मा अपनी इसी अल्पज्ञता के कारण ही अविद्या में फँसता है और सत्य-असत्य में अन्तर नहीं कर पाता। वह यह नहीं जान पाता कि जगत का और ईश्वर का तथा स्वयं उसका वास्तविक स्वरूप क्या है?

जीवात्मा कर्ता और भोक्ता

महर्षि दयानन्द के मत में जीवात्मा कर्ता और भोक्ता है। वह भला-बुरा कर्म करने में स्वतंत्र है। किन्तु उसका फल भोगने में ईश्वर की न्यायव्यवस्था के अधीन है। महर्षि दयानन्द मध्यकालीन पौराणिक भक्तों एवं सन्तों के इस विचार से सहमत नहीं हैं कि जीवात्मा परमात्मा की प्रेरणा से ही कर्म करता है। इस विषय में उनका तर्क है कि यदि जीवात्मा परमात्मा की प्रेरणा से ही कर्म करे तो उसे पाप-पुण्य न लगे। उस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर होवे, किन्तु यह यथार्थ के विपरीत है। जीवात्मा ईश्वर से अलग व स्वतंत्र तत्त्व है। ज्ञान, इच्छा आदि उसके स्वाभाविक गुण हैं। परमात्मा द्वारा उसे कर्म करने के लिए शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरण आदि साधन प्राप्त हुए हैं। इनसे वह स्वतन्त्रतापूर्वक

कर्म करता है।

यदि जीवात्मा कर्म करने में स्वतंत्र नहीं है। वह केवल परमात्मा की प्रेरणा से ही कर्म करता है तो ऐसी स्थिति में उसके ज्ञान, इच्छा आदि स्वाभाविक गुण व्यर्थ सिद्ध होंगे, और फिर भले-बुरे कर्मों के फल का भोक्ता प्रेरक परमेश्वर ही होगा। इसलिए इस दोष से बचने के लिए एकमात्र जीवात्मा को ही कर्ता और भोक्ता मानना तर्कसंगत प्रतीत होता है। जीव जैसा भला-बुरा कर्म करता है वैसा ही ईश्वर उसके कर्मों के फल सुख-दुःख के रूप में देता है। ईश्वर जीवों के पाप कभी क्षमा नहीं करता। पौराणिक, ईसाई और मुसलमानों का मत है कि जीवात्मा ने चाहे जितना भयंकर पाप क्यों न किया हो यदि वह ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना कर लेता है, ईसा और मुहम्मद साहब, पर ईमान लाता है, तौबा कर लेता है तो उसके सारे पाप माफ हो जाते हैं। महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' में इन सभी मतों की तर्कयुक्त समीक्षा करके यह सिद्ध किया है कि ईश्वर न्यायकारी है। इसलिए वह किसी जीव के पाप क्षमा नहीं करता। यदि ईश्वर जीवों के पाप क्षमा (माफ) कर दे तो उसका न्याय ही नष्ट हो जाये और संसार में अपराध ही अपराध छा जायें।

जीवात्मा का पुनर्जन्म

पिछले जन्मों में किये गये अच्छे-बुरे कर्मों के फल भोगना जीवात्मा का स्वभाव है। यह फल भोग शरीर के बिना सम्भव नहीं है। इसलिए जीवात्मा को एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है। यही जीवात्मा का पुनर्जन्म है। महर्षि दयानन्द पुनर्जन्म का सिद्धान्त मानते हैं। इसलिए उन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश' में पुनर्जन्म का सिद्धान्त न मानने वाले चार्वाक, ईसाई और मुसलमानों के मतों को दोषपूर्ण बतलाकर अनेक तर्क एवं प्रमाणों से पुनर्जन्म को सिद्ध किया है।

पो. जाना बाजार, जिला फैजाबाद, (उ०प्र०)

समानता का पाठ

–जयगोपाल शर्मा

स्वामी दयानन्द के संपर्क में जो भी आता, उनकी सादगी, साफगोई, विनम्रता और सच्चाई से प्रभावित होकर उनका अनुगामी बन जाता था। उनके अनुयायियों में सभी तरह के लोग शामिल थे। स्वामी जी सभी को समान दृष्टि से देखते थे। किंतु उनके कुछ अमीर व सवर्ण वर्ग के अनुयायी यह पसंद नहीं करते थे कि वे निम्न, अशक्त व गरीब तबके के अनुयायियों को भी उसी नजर से देखें, जिस नजर से उन्हें देखते हैं। इस बात के लिए वे समय–समय पर स्वामी जी को टोकते भी रहते थे। किंतु स्वामी जी किसी की परवाह न करते। एक बार एक गरीब ने उन्हें अपने घर खाने पर आमंत्रित किया। स्वामी जी ने उसका आमंत्रण बड़ी खुशी से स्वीकार कर लिया और निश्चित दिन वह उस व्यक्ति के घर पर भोजन करने पहुँच गए। वह उन्हें अपने घर आया देखकर खुशी से फूला न समाया और उसने अपनी क्षमता के अनुसार भोजन उनके आगे परोस दिया। स्वामी जी प्रसन्नतापूर्वक भोजन करने लगे। जब यह बात उनके कुछ अमीर और सवर्ण अनुयायियों तक पहुँची तो वे तुरंत उस गरीब मेजबान के घर पहुँच गए। वहाँ स्वामी जी को भोजन करते देख बोले, 'स्वामी जी, यह क्या....।' अपने अनुयायी की बात पूरी होने से पहले ही स्वामी जी मुस्कराकर बोले, 'अरे भाई, ध्यान से देखो मैं यहाँ भी गेंहूँ की रोटी ही खा रहा हूँ। आप सब तो जानते हैं कि मैं प्रत्येक मनुष्य को एक नजर से देखता हूँ। मुझे किसी तरह का भेदभाव मंजूर नहीं।' यह सुनते ही उन सभी अनुयायियों की नजरें झुक गईं और वे अपने व्यवहार पर अत्यंत शर्मिंदा हुए। इसके बाद उन सबने भी बड़े प्रेम से उस गरीब मेजबान के घर भोजन किया। इस तरह लोगों के मन में भेदभाव की दीवार हमेशा के लिए अपने–आप हट गई।

षड्दर्शन-एक परिचय

गतांक से आगे.........

इससे पूर्व हम गत दो अंकों में चार आस्तिक दर्शनों की चर्चा कर चुके हैं, शेष दो आस्तिक दर्शनों पर विचार इस अंक में करेंगे।

वेदान्त दर्शन- इस दर्शन के रचयिता बादरायण वेदव्यास हैं। इसके प्रमुख भाष्यकार -

1. शंकराचार्य - शारीरिक भाष्य अद्वैत मत
2. रामानुजाचार्य - श्री भाष्य - विशिष्टाद्वैत मत
3. निम्बार्क - वेदान्त पारिजात सौरभ - द्वैताद्वैत मत
4. मध्वाचार्य - पूर्णप्रज्ञ भाष्य - द्वैतमत मत
5. बल्लभाचार्य - अणु भाष्य - शुद्धाद्वैत मत

उपर्युक्त भाष्यों में शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त प्रमुख है। शंकर ने अपने भाष्य में जीव-ब्रह्म की एकता और माया के कारण इनमें भिन्नता बताई है। इसलिए इसे अद्वैत मत कहा गया है। इनके अनुसार "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर:" अर्थात् ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है तथा जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है।

अद्वैत मत के अनुसार-वेदान्त में समस्त विश्व के संचालक, नियन्ता चेतन सभी शास्त्रों ने ब्रह्म को जगत् का कर्ता, धर्ता और संहर्ता स्वीकार किया है। वेदान्त का तात्पर्य केवल ब्रह्म के अस्तित्व को सिद्ध करना है। अन्य तत्त्वों का प्रतिषेध नहीं, जैसा कि वेदान्त के भाष्यकार शंकर ने उस परम तत्त्व चेतन ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी का सर्वथा अस्तित्व नहीं है, ऐसा माना है।

वेदान्त का अर्थ है- वेद का अन्तिम सिद्धान्त। व्यासमुनि के शिष्य जैमिनि ने पूर्वमीमांसा में जिन सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है, वे वस्तुतः व्यासमुनि को भी अभीष्ट थे। जैमिनि ने

'चोदनालक्षणो धर्मः' कहा है, उसका एक निश्चित उद्देश्य है– मोक्ष अथवा ईश्वरप्राप्ति।

मीमांसा दर्शन – में समाज के कर्त्तव्यों और अकर्त्तव्यों का विश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इससे किसी दर्शन का विरोध नहीं है। मीमांसा समाज के लिए उन अनुष्ठानों का वर्णन करता है जो वर्तमान में उसके अभ्युदय और मृत्यु के बाद कल्याण के साधक है।

वेदान्त ने उस ईश्वर का ही विशेष प्रतिपादन किया है। 'धर्म–जिज्ञासा' और 'ब्रह्म–जिज्ञासा' का मुख्य विषय 'ब्रह्म' है। वह इस शास्त्र के अनुसार जगत् का कर्त्ता, धर्ता और संहर्त्ता है। वह जगत् का निमित्त कारण है, उपादान कारण नहीं है। ऋग्वेदादि शास्त्रों का भी कारण ब्रह्म ही है। जगत् की समस्त रचना में सर्वत्र समन्वय मिलता है जो ब्रह्म के अस्तित्व को बता रहा है। वेदान्त में ब्रह्म को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, आनन्दमय, नित्य, अनादि और अनन्तादि गुणों वाला माना है। वह जन्म–मरणादि के क्लेशों से रहित है। वह निराकार तथा कूटस्थ नित्य है। प्रकृति को कार्यरूप में तथा प्रलय में फिर कारण में लीन करता है और स्वयं अविकारी है। वह सब जगत् का नियन्ता तथा जीवों को कर्मानुसार फल देनेवाला है। जीव–ब्रह्म की एकता की मान्यता मूल वेदान्त से विरुद्ध है। जीवात्मा चेतन, तथा नित्य होते हुए भी अल्पज्ञ, एकदेशी, जन्म–मरण में आनेवाला, कर्म करने में स्वतन्त्र किन्तु फल भोगने में परतन्त्र है। वह ज्ञान के द्वारा अज्ञान के बन्धन को काटकर मोक्ष को प्राप्त करता है। मोक्ष में भी जीव का ब्रह्म में लय नहीं होता। जीव–ब्रह्म की सत्ता के अतिरिक्त प्रकृति की भी पृथक् सत्ता स्वीकार की है।

नवीन वेदान्तियों का यह कथन भी मिथ्या है कि वेदान्त में कर्मों के त्याग और केवल ज्ञान का उपदेश है। वेदान्त में

पुरुष-जीवात्मा को कर्त्ता कहा है और यह भी कहा गया है कि यदि स्वतन्त्र कर्त्ता न होगा, तो शास्त्र का कर्त्तव्य व अकर्त्तव्य कर्मों का उपदेश निरर्थक ही हो जायेगा। वेदान्तदर्शन में सुकृत-दुष्कृत कर्मों का वर्णन (3/1/9-11) सूत्रों में, स्वाध्याय का वर्णन (3/3/3) सूत्र में, काम्यकर्मों और उनके अंगों की करणीयता का वर्णन (3/3/60,61 सूत्रों में) मिलता है। वेदान्त (3/4/19) में अग्निहोत्रादि कर्मों के अनुष्ठान को कर्त्तव्य कहा है और उपासना के लिए योग के आठ अंगों का भी अनुष्ठान करना होता है। अतः वेदान्तियों की कर्म-त्याग की बात वेदान्तविरुद्ध होने से कल्पित ही है।

छः दर्शनों का मूल 'वेद' हैं-वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक हैं, इसलिए दर्शनों में वर्णित समस्त सिद्धान्तों का मूल वेद में मिलता है। सभी दर्शनों में वेदों को ईश्वरीय ज्ञान होने से स्वतः प्रमाण माना है। वेद-मूलक होने से ही दर्शनों को वेदों का उपांग माना जाता है। महर्षि दयानन्द ने दर्शनों, वेदांगों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों को ही प्राचीन वेद-भाष्य माना है। दर्शनों में प्रतिपादित मान्यताओं को छोड़कर वेदों की व्याख्या असम्भव ही है। **योग-दर्शन** में विद्या और अविद्या की व्याख्या, चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहना 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' (यजु.) 'युञ्जते मनः' (ऋग्.) इत्यादि मन्त्रों की ही व्याख्या है। योग में 'ओम्' को परमेश्वर का नाम बताया है, यह भी यजु. (40/17) मन्त्र की व्याख्या और यजु. (40/8) मन्त्र में परमात्मा का 'अकायम्' 'शुद्धम्' 'अपापविद्धम्' इत्यादि पदों से जो स्वरूप बताया है, उसी की व्याख्या योग में क्लेश, कर्म, विपाकाशयरहित पुरुषविशेष कहकर की है।

वैशेषिक दर्शन में द्रव्यादि पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्य का वर्णन है। उसे वेद में दिति-खण्डीकरण- विश्लेषण और अदिति अखण्डीकरण, संश्लेषण अथवा 'चित्तिमचित्तिं चिनवद्विविद्वान्'

(ऋ.4/2/11) कहकर विद्वान् का यह कर्त्तव्य बताया है कि वह चित्ति-ज्ञान, अचित्ति-अज्ञान का सामान्य-विशेष रूप से विश्लेषण करें।

सांख्य में सत्कार्यवाद का सिद्धान्त ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में पठित सत् व असत् पदों की ही व्याख्या है। **न्याय** में प्रमाण, प्रमेय, तर्क तथा अनुमान का विशेष वर्णन है। तर्क को वेद में 'ऊह' कहा गया है। प्रमेयान्तर्गत आत्मा, मन शरीरादि का मन्त्रों में पर्याप्त वर्णन मिलता है। **मीमांसा** में वैदिक यज्ञों की ही व्याख्या है। वेद-मंत्रों में यज्ञ, यजमान, आहवनीय, गार्हपत्यादि का वर्णन मिलता है- 'सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः' इत्यादि मन्त्रों में यज्ञकर्त्ता की शुभाशंसा, और 'ऋचां त्वाः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु' इत्यादि मंत्रों में यज्ञ के होता, उद्गाता अध्वर्यु तथा ब्रह्मा चारों ऋत्विजों का वर्णन मिलता है। वेदान्त दर्शन में वेद-प्रतिपादित सिद्धान्तों का ही वर्णन है। इसमें ब्रह्म को ऋग्वेदादि का तथा सृष्टि की उत्पत्त्यादि का कारण माना है, वह वेद में भी है- 'तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः.' (यजु.31/7) इसमें परमेश्वर से वेदोत्पति तथा "इयं विसृष्टिर्यत आबभूव.... यो अस्याध्यक्षः," (ऋ. 10/129/7) मन्त्र में परमेश्वर से सृष्ट्युत्पत्ति तथा परमेश्वर को इसका अध्यक्ष बताया है। 'तद्दूरे तद्वन्तिके' (यजु. 40/5) तथा 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' (यजु.) इत्यादि मन्त्रों में परमात्मा की दूरी अज्ञानता और समीपता ज्ञान से बताई है और विद्या से मोक्षप्राप्ति मानी है। इन्हीं का विस्तार से व्याख्यान योग और वेदान्त में किया गया है। इस प्रकार गम्भीरता से विचारने पर स्पष्ट हो जाता है कि दर्शनों के समस्त सिद्धान्त वेद-सम्मत है अथवा बीजरूप में वेद में कही हुई बातों का दर्शनों में विस्तार से व्याख्यान किया गया है।

आर्यभाषा (हिंदी) के प्रबल समर्थक महात्मा हंसराज जी

–प्रो. (डॉ.) सुन्दरलाल कथूरिया

आर्य-जगत् के अग्रणी नेता वेदोद्धारक महर्षि दयानंद के अनन्य भक्त, वैदिक सिद्धांतों एवं आर्य समाज की मान्यताओं के प्रचारक सादा जीवन उच्च विचार के मूर्तिमंत रूप, दृढ़व्रती, आदर्श शिक्षक, यशस्वी संपादक, लेखक तथा महात्मा हंसराज जी ने अपने जीवन का उत्तमांश डी. ए.वी. से संबंद्ध संस्थानों को सर्वात्मना समर्पित कर दिया। अभावग्रस्त जीवन जीने वाले महात्मा हंसराज जी का बचपन संघर्षों में व्यतीत हुआ, किन्तु अपने संकल्प के बल पर उन्होंने सफलता के उतुंग शिखरों पर पद-निक्षेप किया। अपने प्रेरक उद्बोधनों से असंख्य विद्यार्थियों के जीवन का उद्धार किया। गायत्री मंत्र के जाप संगठन-शक्ति, वेदाध्ययन, तप-त्याग, शिक्षा के आदर्श, महर्षि दयानंद के प्रेरक जीवन से युवकों को प्रेरित करने वाले महात्मा हंसराज जी ने उन्हें आर्यभाषा (हिन्दी) के प्रचार-प्रसार का संकल्प लेने की प्रेरणा दी।

वे सच्चे अर्थों में आर्य थे और उनमें आर्यत्व का जातीय स्वाभिमान था। इस जातीय स्वाभिमान को वे सभी आर्यों में जगाना चाहते थे और आर्यों को सुसंगठित होकर चलने की प्रेरणा देते थे। युवकों में इन भावों को जागृत करना उनकी दृष्टि में और भी आवश्यक था। 'युवकों के नाम' शीर्षक लेख में उन्होंने इन बातों को अन्य देशों के उदाहरण देकर स्पष्ट किया। जाति के भाव को धर्म से और भाषा से जोड़ते हुए महात्मा हंसराज जी ने लिखा है, "आप कोई जाति नहीं देख सकते, जहाँ भाषा एक न हो। यह एक ऐसा ही आवश्यक प्रश्न है जैसा कि वंश (Race) का। लोग बिना इस एकता के एक लड़ी में पिरोए नहीं जा सकते।

राष्ट्रीयता की भावना को सुदृढ़ करने के लिए किसी राष्ट्र में किसी एक राष्ट्रभाषा का होना परमावश्यक है, क्योंकि इसके बिना किसी राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति नहीं हो सकती। किसी एक भाषा के साथ किसी एक लिपि का होना भी आवश्यक है, अतः महात्मा जी ने भाषा के साथ लिपि के प्रश्न को भी उठाया और लिखा कि "आर्य जाति व भारतवर्ष की उन्नति के लिए एक लिपि का होना आवश्यक है। फिर वह भाषा क्या हो तथा वह लिपि क्या हो?"

महात्मा हंसराज जी ने जब राष्ट्रभाषा और उसकी देवनागरी लिपि का प्रश्न उठाया तब देश पराधीन था और पूरे देश में अंग्रेजी का वर्चस्व था। ब्रिटिश शासन के उस दौर में जातीय स्वाभिमान, स्वराज (राष्ट्रीयत), आर्य शिक्षण-पद्धति, आर्य भाषा (हिंदी) आदि की वकालत करना खतरे से खाली नहीं था, किंतु इसकी परवाह न करते हुए आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द और उनके अनुयायियों ने निर्भीकतापूर्वक इन का प्रबल समर्थन किया।

वैदिक सिद्धांतों के साथ आर्यभाषा (हिन्दी) के भी महात्मा हंसराज सबल पक्षधर थे। उन्होंने युक्ति-तर्क से आर्यभाषा (हिन्दी) को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने की वकालत की थी। उनका तर्क था कि जो भाषा देश में सर्वाधिक बोली जाती हो, वही राष्ट्रभाषा बनने की अधिकारिणी है। बंगला, गुजराती, मराठी, पंजाबी, तेलुगु, कन्नड़, तमिल आदि भाषाएँ अपने-अपने क्षेत्रों में बोली जाती हैं और इनकी बोलने वालों की संख्या अपेक्षाकृत सीमित है। तत्कालीन जनगणना के आंकड़ों के आधार पर, बंगला बोलने वालों की संख्या छः करोड़, गुजराती और मराठी बोलने वालों की संख्या एक-एक करोड़, पंजाबी भाषियों की संख्या लगभग डेढ़ करोड़ है, किंतु हिंदी भाषाभाषी दस-बारह करोड़ है। जहाँ तक संस्कृत का प्रश्न है, वर्तमान समय में उसे बोलने वालों

की संख्या बहुत कम है। महात्मा जी के शब्दों में, "संस्कृत विद्वानों की भाषा हो सकती है परंतु ऐसा विचार है कि संस्कृत हमारे देश की जनभाषा बन जाए और हमारी आगामी पीढ़ी संस्कृत बोलने लग जाए, यह एक कल्पनामात्र है।" अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या मुश्किल से पाँच प्रतिशत होगी। यों भी कोई विदेशी भाषा इस देश की राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती।

हिंदी की लिपि देवनागरी है। भारतीय संविधान में जिस हिंदी को राजभाषा के रूप में मान्यता दी गई है, उसकी लिपि देवनागरी है। महात्मा हंसराज हिंदी भाषा के साथ देवनागरी लिपि के भी प्रबल समर्थक थे। वे चाहते थे कि पूरे देश में एक लिपि हो और वह लिपि देवनागरी हो। सुप्रसिद्ध गाँधीवादी एवं भूदान के प्रणेता आचार्य विनोबा भावे ने भी जोड़ लिपि के रूप में नागरी का समर्थन किया था। अन्य भारतीय भाषाओं की उत्तमोत्तम कृतियाँ हिन्दी में अनूदित होकर नागरी में प्रकाशित हो चुकी है। भाषाओं के दोषों को उजागर कर हिन्दी की निर्दोषता और नागरी लिपि की वैज्ञानिकता को सिद्ध किया है।

युवकों को प्रेरित करते हुए महात्मा हंसराज जी ने कहा है कि वे हिंदी के प्रचार को अपने जीवन का मिशन बनाएँ। कारण यह कि "आर्यसमाज का आरंभ से ही यह विचार रहा है कि हिंदी का प्रचार किया जाए। जब दयानंद ऐंग्लो वैदिक कॉलेज की स्थापना की गई थी तो चार सिद्धांतों में से एक हिंदी प्रचार का था। कहने की आवश्यकता नहीं कि महर्षि दयानन्द, आर्यसमाज और डी.ए.वी. के प्रति सर्वात्मना समर्पित होने के कारण महात्मा हंसराज हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के प्रबल समर्थक थे।

बी3/79, जनकपुरी, नई दिल्ली-58

मो. 09718479970

भगतसिंह के विचार को ठीक से समझने की जरूरत

–ओमप्रकाश दास

हाल ही में भगतसिंह का शहादत दिवस था। उनकी शख्सियत के कई पहलुओं को हम अब भी ठीक से समझ नहीं पाए हैं। उनके हर फैसले में, हर कदम में एक संदेश छिपा है। फाँसी पर चढ़ने के कुछ मिनट पहले तक वह लेनिन को पढ़ रहे थे। अंतिम दिनों में उनकी इच्छा थी कि जेल की एक महिला सफाई कर्मचारी के हाथ से दिया खाना खाएँ। 24 साल की कम उम्र में इतना पढ़ा कि तीन बार पीएचडी हो जाए। फाँसी के तीन दिन पहले उन्होंने चिट्‌ठी लिखी कि तीनों क्रांतिकारियों (उनके साथ सुखदेव और राजगुरु) पर ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ युद्ध छेड़ने का दोषी ठहराकर गोली मार दी जाए न कि अंग्रेज पुलिस अधिकारी सांडर्स की हत्या के जुर्म में सजा दी जाए। उनका मानना था कि कोई भी आंदोलन या कोई भी संघर्ष तब तक अधूरा है जब तक कि यथास्थिति को ध्वस्त करते हुए नवनिर्माण की नींव न रखी जाए। नवनिर्माण का एक नक्शा भगतसिंह के पास था।

भगतसिंह मानव मुक्ति की ऐसी विचारधारा की खोज में थे जो न सिर्फ व्यावहारिक हो बल्कि वैश्विक स्तर पर उसके अनुभव भी मौजूद हों। उनकी यह खोज स्कूल के दिनों से शुरु हुई जो लाहौर के नेशनल कॉलेज तक पहुँची। कॉलेज में ही वह कार्ल मार्क्स, मेजिनी और गैरीबाल्डी की जीवनी पढ़ चुके थे। मार्क्स, एंजल्स, लेनिन और ट्राटस्की के लेखन से वे परिचित हो चुके थे। जाहिर है उनके व्यक्तित्व पर इन सबका गहरा असर पड़ा। उनके विचारों का सफर गाँधीवादी राष्ट्रवाद से शुरू होकर एक रोमैंटिक क्रांतिकारी विचारों तक पहुँचा। ऐसा नहीं है कि वे लेनिन या मार्क्सवादियों के रास्ते पर ही भारत का भविष्य देखते थे, लेकिन समाजवाद की अवधारणा के समर्थक तो वह थे ही। आज जो वामपंथ हम अपने देश में देखते हैं वह भारतीय परिवेश में बिल्कुल अप्रासंगिक है। भारतीय मानस अर्थ से ज्यादा एक ऐसे आध्यात्मिक संसार की तरफ देखता रहता है जहाँ ऊँच-नीच,

जात-पात, राजा-रंक - यह सामाजिक व्यवस्था नहीं बल्कि किसी और की बनाई व्यवस्था है जिसे हमें नहीं छेड़ना चाहिए। मामला पूरी तरह आर्थिक तानेबाने में ही नहीं गुँथा है भगतसिंह यह अच्छी तरह समझ चुके थे।

लाहौर में डीएसपी सांडर्स की हत्या के बाद गाँधी जी ने अपना एक मशहूर लेख लिखा 'द कल्ट ऑफ बम' यानी बम की संस्कृति। जाहिर है गाँधी जी ने क्रांति के इस रास्ते से अपनी असहमति जताई थी। इस आलोचना के बाद भगतसिंह के साथ भगवतीचरण वोहरा ने एक पर्चा लिखा- 'फिलॉसफी ऑफ बम' यानी बम का दर्शन। इसमें उन्होंने लिखा कि जब भी हिंसा को एक भयानक जरूरत के रूप में इस्तेमाल किया गया वह न्यायसंगत था, लेकिन तय है कि सभी प्रकार के जनांदोलनों के लिए एक नीति के रूप में अहिंसा अनिवार्य थी।

आज हम विकास के एक समान बँटवारे की चर्चा करते थकते नहीं। सरकार की नीतियों से लेकर बजट तक में हर साल समावेशी विकास का गुणगान होता है। भगतसिंह ने उसी समय इसकी तरफ इशारा किया था। एक आर्यसमाजी परिवार से आने वाले भगतसिंह ने संपूर्ण आजादी के एजेंडे में उस सामाजिक असमानता को प्रमुखता से शामिल किया था जिसमें अछूतों के लिए बराबर का अधिकार और बराबर के मौके हों। अपने मशहूर लेख 'अछूतों की समस्या' में उन्होंने लिखा था कि मौजूदा पूँजीवादी नौकरशाही से किसी तरह की उम्मीद बेकार है। ऐसे में रास्ता एक ही है कि एकजुटता के साथ एक सामाजिक आंदोलन खड़ा किया जाए जो कि राजनीतिक और आर्थिक क्रांति का हिस्सा हो।

भगतसिंह ने सवाल किया था कि क्या मानसिक मेहनत करने वाले, शारीरिक मेहनत करने वालों से ज्यादा उत्पादक हैं यानी क्या किसी इमारत के निर्माण में लगे एक मजदूर का श्रम किसी सरकारी ऑफिस में काम करने वाले बाबू से सस्ता है? समस्या का समाधान तभी हो सकता है जब दोनों वर्गों को उत्पादनकारी श्रम समझा जाए। सिर्फ भगतसिंह का नाम लेने से बात नहीं बनेगी। आज उनके विचार के प्रसार की जरूरत है।

उपनिषद् का सन्देश – दृढ़संकल्प बनो

–स्व. महात्मा आनन्द स्वामी

मैक्समूलर ने जब उपनिषदों को देखा तो लट्टू हो गया। उपनिषद् पढ़ने के लिए वह जर्मनी से पैरिस जा पहुँचा। वहाँ फ्रैंच भाषा में उपनिषदों को पढ़ा, फारसी में भी पढ़ा और बिना किसी झिझक के उसने लिखा–

"ये उपनिषद् उन लोगों की बुद्धि का फल है जो महान् बुद्धिवाले थे। हमारा ईसाई मत उनके समक्ष कभी जड़ नहीं पकड़ सकता। भारत की यह विद्या यूरोपभर में बह निकलेगी और हमारे ज्ञान तथा विचारों में परिवर्तन लायेगी।"

और तब अपनी पुस्तक 'इंडिया ह्वाट कैन इट टीच अस' – उन्होंने लिखी। मैक्समूलर जी ने लिखा–

"यदि वास्तविकता को जानने का उद्देश्य यह है कि मनुष्य मृत्यु के भय से बच जाय और मृत्यु के लिए पूरी शक्ति से तैयार हो जाय तो मेरी सम्मति में उपनिषदों के वेदान्त का अध्ययन करने के अतिरिक्त दूसरा कोई भी श्रेष्ठ मार्ग नहीं। मैं उपनिषदों का बहुत ऋणी हूँ कि उनसे मुझे अपने जीवन–सुधार में बहुत सहायता मिली है। ये उपनिषद्–ग्रन्थ सारे संसार के धार्मिक साहित्य में आत्मिक उन्नति के लिए सदा एक बहुत उच्च और समादरणीय स्थान घेरे रहे हैं और सदा घेरे रहेंगे।"

यह मैक्समूलर जी ने लिखा और तब स्वीडन में एक विद्वान् हुए। पाल ड्यूसन उनका नाम था। उन्होंने उपनिषद् पढ़े तो लिखा–

"उपनिषद् मनुष्य की मेधा वृद्धि का अनमोल फल हैं। जीवन और मृत्यु के समय, केवल दुःख और कष्ट के समय नहीं अपितु हर समय, प्रतिक्षण उनसे ऐसी शान्ति मिलती है जैसी और कहीं भी नहीं मिलती। भारत के लोगों के पास आत्मज्ञान और आत्मशान्ति का ऐसा कोष है जो संसार में और किसी के पास भी नहीं है। मैं जब भारत की यात्रा के

लिए गया तो बहुत-सी लाभप्रद बातें मुझे मिलीं, परंतु सबसे लाभप्रद और महत्त्वपूर्ण है पवित्र भाषा में ऋषियों का ज्ञान देनेवाले उपनिषद्"।

यह पाल ड्यूसन ने लिखा और ज्योकोलेट, जो पाण्डिचेरी के गवर्नर थे, ने भी ऐसी ही बात लिखी। उनके पश्चात् श्रीमती एनी बेसेण्ट ने उपनिषदों को पढ़ा। वह तो उन पर लट्टू हो गईं। उसके पश्चात् मिस्टर ह्यूम ने अपनी पुस्तक-"डॉग्मास ऑफ बुद्धिज्म" में लिखा- "मैंने अरस्तु, सुकरात, अफलातून और कितने ही अन्य विद्वानों के ग्रंथ बहुत ध्यान से पढ़े हैं परन्तु जैसी विद्या इन उपनिषदों में मैंने देखी और जितनी शान्ति उनमें पाई, वैसी तो और किसी भी स्थान पर मुझे नहीं मिली।"

और अपनी पुस्तक 'इज गॉड नोएबल' में श्री जी.आर्क एम. ए. ने लिखा-

"उपनिषदों के ज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य की आत्मिक, मानसिक और सामाजिक आवश्यकताएँ किस प्रकार पूर्ण हो सकती हैं। वेदान्त अर्थात् उपनिषदों की शिक्षा अत्यन्त ऊँची, सुंदर और ऐसे सत्य से भरपूर हैं जो मनुष्य के हृदय पर चित्रित हो जाता है, क्योंकि जब मनुष्य संसार के दुःखों और चिन्ताओं में घिर जाता है, तब इनके अतिरिक्त उसके मन और आत्मा को शान्ति देने के लिए दूसरा कोई भी साधन उसे नहीं मिलता जो उसे सहारा दे सके।"

यह उन्होंने लिखा। परन्तु इस प्रकार तो मैं आपको कितने ही विद्वानों के विचार बताता रहूँगा-भारत के, विदेशियों के। एक-दो या दस ने नहीं, सहस्त्रों विद्वानों ने उपनिषदों की प्रशंसा में अपने विचार प्रकट किये हैं। उन सबको सुनाऊँ तो आप भी इन विचारों को नहीं, अपितु उस ज्ञान को जानना चाहेंगे जो उपनिषदों में विद्यमान है।

सबसे पहला निचोड़, पहला खींचा हुआ इत्र जो उपनिषदों के स्वाध्याय से प्राप्त होता है, वह यह है कि दृढ़ संकल्पवाला

बने। छान्दोग्य उपनिषद् में, बृहदारण्यक उपनिषद् और दूसरे सभी उपनिषदों में इस दृढ़ संकल्प का बार-बार वर्णन आता है। शाण्डिल्य ऋषि की विद्या है कि-

"क्रतुमयः पुरुषः।" 'यह मनुष्य अपने संकल्पों का बना हुआ है।' जैसा संकल्प करोगे, जैसे विचार, जैसी भावना होगी वैसे ही बन जाओगे। आगे चलकर उन्होंने कहा- **"कृतं लोकं पुरुषोऽभिजायते।"**

अर्थात् 'मनुष्य अपने बनाये संसार में उत्पन्न होता है।' आप कहेंगे कि आर्यसमाज की वेदी पर बैठकर यह कैसी बात कहता है आनन्द स्वामी? परन्तु सुनो, यह बिल्कुल सत्य है कि मनुष्य अपने बनाये हुए संसार में उत्पन्न होता है। यह सत्य है कि संसार परमात्मा ने बनाया, परन्तु यह संसार कैसा हो, इसका निर्णय मनुष्य स्वयं करता है। कैसा उसका उद्देश्य हो, कैसे उसके मित्र और सम्बन्धी हों, कैसे माता, पिता, भाई, बहिन, पति, पत्नी, पुत्र और पुत्री हों, इसका निर्णय मनुष्य स्वयं करता है। जैसे विचार उसके हृदय में हों, जैसी भावना उसमें हो, वैसा ही उसका संसार बन जाता है। यदि उसके विचार खोटे हैं, भावनाएँ खोटी हैं तो स्मरण रखिये कि इस विचारधारा के कारण वह खोटा ही बनेगा, अच्छा नहीं बनेगा। और यदि पवित्र विचारधारा उसके मन में बह रही है तो वह अच्छा बनेगा, पवित्र बनेगा, खोटा कभी बन नहीं सकता। इसलिए दृढ़ संकल्पवाला बनो, यह पहली बात है।

इस सम्बंध में छान्दोग्योपनिषद् के ऋषि ने महिदास की कथा लिखी। महिदास ऐतरेय उसका पूरा नाम है। वह यज्ञ करा रहा था। एक सौ सोलह वर्ष तक वह यज्ञ होनेवाला था। उसका स्वास्थ्य उत्तम न था। वैद्यों ने उसे देखा और कहा, "महिदास! इतनी देर तू जी नहीं सकता। इस यज्ञ को छोड़ दे। जो रोग तुझे लग गया है, उससे तू बचेगा नहीं।" महिदास था आत्मज्ञानी। यह जाननेवाला कि - **"क्रतुमयः पुरुषः।"**

'यह मनुष्य अपने संकल्पों का बना है।' अतः दृढ़ संकल्प के

साथ बोला-

"स किं म एतदुपतपति, योऽहमनेन न प्रेष्यामीति।"

'ऐ मेरे रोग! मेरे शत्रु! मुझे क्यों तंग करता है? तेरे किसी आक्रमण से मैं मरूँगा नहीं। मुझे मरना नहीं है।'

और छान्दोग्य का ऋषि कहता है कि वह दृढ़ संकल्पी महिदास पूरे 116 वर्ष तक जीता रहा-**"स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्।"** यही नहीं, छान्दोग्य का ऋषि कहता है-

"स ह षोडशवर्षशतं जीवति य एवं वेद।"

'कोई भी व्यक्ति जो दृढ़ संकल्प के साथ ऐंसा चाहेगा, वह 116 वर्ष तक जीवेगा।'

यह है दृढ़ संकल्प का फल! परन्तु दृढ़ संकल्प केवल रोग और व्याधि में ही मनुष्य को सफलता नहीं देता, हर बात में देता है। राजनैतिक कार्य हो या सामाजिक, शारीरिक कार्य हो या मानसिक, व्यापार हो या शिल्प, योग का मार्ग हो या संसार का रास्ता, किसी भी स्थान पर दृढ़ संकल्प के बिना कार्य नहीं चलता। और प्रत्येक क्षेत्र में जहाँ मनुष्य यह दृढ़ संकल्प करके आगे बढ़ता है कि 'मैं इस कार्य को करूँगा, मैं इसे करता हूँ- वहाँ उसे सफलता मिलती है अवश्य! मेरा बेटा रणवीर जब अमेरिका गया तो वहाँ से उसने अपने भाई के नाम बहुत-से पत्र लिखे। एक पत्र में अमेरिका के प्रसिद्ध नगर शिकागो का वर्णन है। आज इस विशाल नगर में पृथिवी के ऊपर रेल चलती है, भूमि के नीचे रेल चलती है, आकाश में भी रेल चलती है। संसार के बड़े-बड़े भवन वहाँ हैं। इतना व्यापार है कि अमेरिका के किसी दूसरे नगर में इतना व्यापार नहीं होता। कुछ ही वर्ष पहले इस शिकागो को अटलांटिक महासागर से कई सौ मील परे एक नहर के द्वारा सागर के साथ मिला दिया गया है। अब वह बन्दरगाह भी बन गया है। यह सब-का-सब निर्माण वहाँ केवल 90 वर्ष में हुआ है। 90 वर्ष पूर्व शिकागो केवल एक उजाड़ वन्यप्रदेश था। केवल तेज बदबूवाले शिकागो वहाँ होते थे। 'शिकागो'

अमेरिका के आदिवासियों की भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है 'जंगली प्याज'। केवल ये प्याज वहाँ स्वयं उत्पन्न होते थे, जहाँ आज संसार का एक विशाल और धनिकतम नगर बसा हुआ है। रणवीर ने तीव्रता के साथ इतने थोड़े समय में, इतनी महान् उन्नति को देखा तो एक सज्जन इसे साथ लेकर शिकागो के टाउन-हॉल में गये। शिकागो के टाउन-हॉल की दीवार पर मोटे सुनहरे अक्षरों में जो आदर्श लिखा हुआ था उसे दिखाकर उस सज्जन ने कहा, 'यह हमारा आदर्श है-हमारा संकल्प जिसके कारण हमें लगातार सफलता मिली है।" और वे शब्द थे- आई विल डू इट।

"मैं करूँगा यह कार्य'। इस प्रकार दृढ़संकल्प होकर जो लोग आगे बढ़ते हैं उन्हें निश्चित रूप से सफलता प्राप्त होती है क्योंकि जाति हो या देश, व्यक्ति हो या सम्प्रदाय-**"क्रतुमयः पुरुषः"**

'मनुष्य अपने संकल्पों का बना हुआ है।' यह है उपनिषद् से सीखने की पहली बात-दृढ़ संकल्पवाले बनो। किन्तु ऐसा न करो मेरे भाई कि उपनिषद् की कथा सुनो सुनकर घर चले जाओ तो फिर स्मरण रखो कि उपनिषद् की कथा सुनने से कोई लाभ नहीं। कथा सुनते हो या पढ़ते हो तो उससे कुछ सीखने का प्रयत्न करो।

सीखने की पहली बात है दृढ़ संकल्प। ऐसा संकल्प करके आगे बढ़ो, तो भी तुरन्त सफलता नहीं मिल जायेगी। याद रखो, इस संसार में ऊँच भी है, नीच भी, गर्मी भी है, सर्दी भी, धूप निकलती है, वर्षा भी होती है, आदर मिलता है तो अनादर भी होता है, गले में फूलों के हार पड़ते हैं तो गालियाँ भी मिलती हैं, धन है तो निर्धनता भी है। स्वास्थ्य है तो रोग भी है, परन्तु जो व्यक्ति दृढ़-संकल्प होकर अपने मार्ग पर डगमगाये बिना निरन्तर आगे बढ़ता जाता है उसे अन्त में सफलता मिलती है अवश्य।

तिब्बत में भारतीय संस्कृति और संस्कृत
(खोजकर्ता आचार्य डॉ. रघुवीर)

–डॉ. शशिबाला

यूरोप में तिब्बत साहित्य पर अनुसन्धानरत विद्वानों से मिलने और चर्चा करने पर आचार्य जी का तिब्बती भाषा में उपलब्ध विपुल संस्कृत साहित्य से साक्षात्कार हुआ। उन्होंने वहीं पर तिब्बती के व्याकरण का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। उनके जीवन में भारत-भारती के अन्वेषण में एक नयी दिशा खुल गयी। उनकी अन्तश्चेतना में इतिहास की वे शताब्दियाँ प्राणवन्त हो उठीं जब भारतीय आचार्यों ने हिमालय के उत्तर में स्थित तिब्बत जाना आरम्भ किया था। तिब्बती साहित्य और इतिहास के अवलोकन से उन्हें ज्ञात हुआ कि सातवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक तिब्बती राजा निरन्तर भारतीय विद्वानों की खोज में अपने शिष्टमण्डल भारतीय विहारों और विश्वविद्यालयों में भेजते रहे। वे ज्ञान के मार्ग पर चलना चाहते थे और वह ज्ञान का मार्ग निकलता था आर्य देश (भारत) से। आचार्य जी के मन में प्रश्न उठा कि "इन एक सहस्र वर्षों में मेरे इन पूर्वज धर्माचार्यों ने किन ग्रन्थों का अनुवाद कर तिब्बत देश को ध र्म एवं ज्ञान के आलोक से आलोकित किया और कला एवं विज्ञान से समृद्ध किया।" कई वर्ष तक खोज करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि तिब्बत की विशाल धर्मग्रन्थ माला 'तंजूर' में आयुर्वेद, दर्शन, व्याकरण, छन्दःशास्त्र, शब्दकोष, ज्योतिष आदि विषयों के ग्रन्थ तथा उन पर टीकाएँ हैं और दूसरी ग्रन्थ माला 'कंजूर' में बुद्ध-वचन हैं, जिनमें विनय, सूत्र और तन्त्र साहित्य आता है।

संसार के जो भी विद्वान तिब्बत के धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास आदि पर कार्य कर रहे थे सभी के साथ आचार्य जी का सम्पर्क होता चला गया। 1936 से उन्होंने तिब्बती लामाओं को सरस्वती विहार में काम करने हेतु निमन्त्रण देना आरम्भ

कर दिया। 1940 में रूस के विद्वान् जार्ज रोरिख ने बुर्यात् के एक तिब्बती लामा को आचार्य जी के पास लाहौर भेजा। इनका नाम था 'साङ्पो लामा'। ये मंगोल और भोट (तिब्बती) भाषाएँ जानते थे। इन्हें सिद्धम् लिपि का भी ज्ञान था और संस्कृत भी लिख और पढ़ लेते थे। आचार्य जी के पास रहते हुए उन्होंने थंका एवं चित्र बनाये और उनके साथ सच्चे अर्थों में 'लोपान्' हो गये। 'लोपान्' का अर्थ है पण्डित और अनुवादक। तिब्बत में जब संस्कृत ग्रन्थों का तिब्बती में अनुवाद होता था तो भारत में संस्कृत-आचार्य और तिब्बत के अनुवादक साथ-साथ कार्य किया करते थे। परन्तु विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा भारत में अपने धर्मग्रन्थ नष्ट हो जाने के कारण आवश्यकता थी कि उन ग्रन्थों का तिब्बती से पुनः संस्कृत में अनुवाद किया जाए। अपनी धरोहर के पुनर्निर्माण के इच्छुक आचार्य जी तिब्बती विद्वानों के साथ कार्य में जुट गये। उन्हीं दिनों 27 जनवरी, 1949 में इटली के प्रो. तुची नागपुर में आचार्य जी से भेंट करने आये। वे भी तिब्बती साहित्य, दर्शन, धर्म और कला की खोज में लगे हुए थे। आचार्य जी के मन में संस्कृत के खोए हुए ग्रन्थों के पुनर्निर्माण की तीव्र इच्छा थी। नागपुर आ जाने पर 1951-52 में उन्होंने एक और विद्वान् लाला चिम्पा को आमंत्रित किया। उनके साथ आचार्य जी घण्टों अनेक विषयों पर विचार-विमर्श करते, कार्य की अनेक योजनाएँ बनाते, तिब्बती ग्रन्थों के प्रकाशन का महत्त्व समझते और औरों को समझाते। इन्हीं दिनों उन्होंने एक बृहद् योजना पर कार्य आरम्भ कर दिया-वह थी तिब्बती-संस्कृत कोष। इस कोष के बारह भाग उनके जीवनकाल में पूरे हो गये थे। शेष कार्य उनके सुपुत्र डॉ. लोकेश चन्द्र ने परिशिष्ट के रूप में तैयार करके सात भागों में प्रकाशित किया।

जहाँ-जहाँ भारतीय संस्कृति गयी वहाँ-वहाँ आचार्य जी चल

दिए। कहीं शरीर से, तो कहीं चेतन से। संस्कृत ग्रन्थों की खोज करते-करते तिब्बत उनके लिए पुण्य स्थली बन गई। वे तिब्बत पर चीनी आधिपत्य के हृदय से विरोधी थे। इस विषय पर उन्होंने अनेक स्थानों पर भाषण दिए एवं लेख लिखे। आचार्य जी द्वारा लिखित 'तिब्बतः ए सूवेनियर' से जिस ढंग से भारतीय आचार्यों, विशेष रूप से आचार्य दीपंकर श्री ज्ञान अतीश के तिब्बत पहुँचने का वर्णन किया गया है उससे लगता है मानों वे स्वयं खड़े उस भव्य स्वागत समारोह को निहार रहे हों। आचार्य जी स्वयं तो तिब्बत न जा सके परन्तु वे समय-समय पर कालिंपोङ्से तिब्बती लामाओं को बुलाते, अपनी संस्था में रखकर उन्हें प्रशिक्षित करते और उन्हें पुनः अनेक प्रश्नों के साथ भेज देते। वे उन्हें हर प्रकार का सहयोग दिया करते थे। ये लामा वहाँ जाकर सूचनाएँ भेजते कि किस प्रकार लोग पुस्तकों को स्तूपों में दबा देते थे। उन्होंने सूचना दी कि पुस्तकों में भरी 60 नौकाएँ लोप हो गई थीं और कैसे बौद्ध विहारों को नष्ट किया जा रहा था। वे धर्म ग्रन्थ नष्ट हो रहे थे जो सुवर्ण, रजत और अनेक रंगों के रत्नों से बनी मसि से लिखे गये थे।

1952-58 में जर्मनी से संस्कृत के विद्वान् प्रो. एफ. आर. हाम को आचार्य जी ने 'कंजूर' नामक ग्रन्थ संग्रह पर कार्य करने के लिए बुलाया। वे कहते थे कि आचार्य जी शतपिटक के माध्यम से भारतीय ज्ञान के सागर को संसार के समक्ष प्रस्तुत कर देंगे। आचार्य जी ने फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी, स्विट्जरलैण्ड आदि सभी देशों से अणुचित्र (माइक्रोफिल्म) रूप में तिब्बती ग्रन्थ मँगवाने आरम्भ कर दिये। अनेक देशों में बिखरी इस सम्पदा को एकत्र एवं प्रकाशित कर वे पुनः भारत को गौरवान्वित करना चाहते थे परन्तु इसमें भी उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। पहले तो उन ग्रन्थों की खोज, फिर माइक्रोफिल्म पर व्यय होने वाले धन की

व्यवस्था और वह सब हो जाने पर स्वतंत्र भारत में शासन की अनुमति लेना, कस्टम से उन्हें छुड़वाना आदि अनेक बाधाओं को पार करना पड़ता था और फिर जब वे तिब्बती में अनूदित इन संस्कृत-ग्रन्थों की प्रतियाँ करवा कर यूरोप के विद्वानों को अनुसंधान करने के लिए भेजते तो भारतीय विद्वान् उनमें रुष्ट हो जाते थे कि वे अपनी धरोहर अन्य देशों को दे रहे हैं परन्तु आचार्य का तो लक्ष्य था इन ग्रन्थों को संसार के समक्ष प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत करना।

आचार्य रघुवीर जी ने तिब्बती ग्रन्थों के अनेक संग्रह चीन, रूस, मंगोलिया, साइबेरिया तथा मंचूरिया आदि देशों में जाकर खोज निकाले, क्योंकि तिब्बती भाषा में संगृहीत ज्ञान के भण्डार तिब्बत की राजनीतिक सीमाओं में बंधे हुए नहीं थे। इस ज्ञान के आलोक के लिये तिब्बती लामा चीन, मंगोलिया, साइबेरिया, मंचूरिया, प्रशान्त महासागर से वोल्गा और कैस्पियन तक पहुँच गये थे। शस्त्र और शास्त्र दोनों में निष्णात ये लामा ज्ञान और शान्ति का सन्देश लिए जहाँ-जहाँ भी गये वहाँ-वहाँ विहारों और राजप्रासादों में अनन्त मूर्तियाँ एवं ग्रंथ पहुँच गये। जब पांछेन् लामा भारत आये तो उन्होंने 'कंजूर' का नार्थाङ् संस्करण आचार्य जी को भेंट किया। एक अन्य संस्करण मंगोलिया के प्रधानमंत्री ने दिया। इसी प्रकार चीन के प्रधानमंत्री चाऊ-अन-लाई ने पीकिंग में छपा तिब्बती 'कंजूर' और 'तंजूर' तथा मंगोल भाषा में 'कंजूर' आचार्य जी को भेंट किया।

भारतीय इतिहास के दुर्लभ मणि-माणिक्यों की अनेक देशों में खोज करते-करते आचार्य जी को ऐसी चित्रावलियाँ मिलीं जिनमें काली देवी, गरुड़, गणेश, ब्रह्मा, इन्द्र आदि अनेक देवता हैं। इनमें वर्षा, हेमन्त, वसन्त, शरद आदि ऋतुओं की देवियों का अंकन है तथा कालचक्र एवं ब्राह्मण-रूप-धर महाकाल आदि देवताओं के पाँच सौ चित्र हैं। इस चित्रावली

पर उन्होंने अपने पुत्र के साथ कार्य आरम्भ किया। उनके जीवनकाल में इस चित्रावली के केवल आठ भाग ही छप पाये। शेष बारह भागों पर डॉ. लोकेश चन्द्र ने कार्य किया और उन्हें छपवा कर एक और अधूरे कार्य को पूरा किया। इन चित्रावलियों के साथ ही आचार्य जी ने कई सहस्त्र पृष्ठों में इनके साधन भी एकत्रित किये थे परन्तु अभी तक उन पर कोई कार्य नहीं हो पाया है।

नागपुर से सरस्वती विहार दिल्ली आ जाने पर भी आचार्य जी की तिब्बत साहित्य और कला में गवेषणा वैसे ही चलती रही। चीन के अत्याचारों से त्रस्त हो परमपावन दलाई जी भारत आ गये, उनके साथ ही तिब्बती विद्वान् एवं कलाकार भी आये। उनके पास न भोजन था, न वस्त्र थे और न ग्रन्थ। इन शरणार्थियों के भोजन-वस्त्र आदि की व्यवस्था के अनेक उपाय किए गए, पर साहित्यिक आवश्यकता की ओर किसी का ध्यान न गया। धुंधली आशाएँ अंधकारमय भविष्य की ओर निहार रही थीं। 1959-60 में आचार्य जी ने 30-35 लामाओं को सरस्वती विहार में प्रश्रय दिया। ये लामा अनेक विद्याओं एवं कलाओं में निष्णात थे। कोई चित्र बनाता, कोई थंका, कोई मूर्तियाँ तो कोई ग्रंथों पर अनुसन्धान कार्य करता। आचार्य जी दिन-रात अन्य कार्यों के साथ -साथ इन सब को संचालित करते। एक ओर भारत तिब्बत सम्बन्धों के साकार दर्शन होते तो दूसरी ओर इन तिब्बतियों का हृदय भी प्रफुल्लित होता।

आचार्य जी ने सरस्वती विहार को तिब्बती भाषा के अध्यापन का भी केन्द्र बना दिया था। अन्य लोगों के साथ शासन के गुप्तचर विभाग की ओर से भी विद्यार्थी भेजे जाते थे ताकि वे तिब्बती भाषा सीखकर सीमा प्रान्तों में सरलता से गुप्तचरी कर सकें। आचार्य जी इन्हें भाषा के साथ-साथ तिब्बती जीवन, रहन-सहन, खान-पान आदि से भी अवगत करवाते थे।

'It was Nehru, not the Chinese, who declared war'

-Parakram Rautela

You suggest India's official account of the cause of the 1962 war is false. What, in your view is the truth?

By September 1962 the Indian "forward policy" of trying to force the Chinese out of territory India claimed had built up great tension in the western (Ladakh) sector of the border, with the Chinese army just blocking it. Then the Nehru government applied the forward policy to the McMohan Line in the eastern sector and when the Chinese blocked that too, India in effect declared war with Nehru's announcement on October 11 that the Army had been ordered to "free our territory", which meant to attack the Chinese and drive them back. As Gen Niranjan Prasad, commander of 4 Division, wrote later: "We at the front knew that since Nehru had said he was going to attack, the Chinese were certainly not going to wait to be attacked"–and of course that didn't. That's how the war began. The Chinese attack was both reactive, in that Gen. Kaul had begun the Indian assault on October 10, and premptive because after that failure the Indian drive had been suspended to build up strength for a resumed attack.

What in your opinion were the policies, on both sides, that brought about the basic border quarrel?

As far as the McMohan Line was concerned, India inherited the dispute which the British had created with China in the mid-1930s by seizing the Tibetan territory they re-named NEFA. The PRC government was prepared to accept that border alignment, but insisted that it be re-negotiated, that is put through the usual diplomatic process, to wipe out its imperialist origins. Nehru refused, using London's false claim that the Simla Conference has already legitimized the McMohan Line to back up that refusal–that was his Himalayan blunder. Then in 1954 he compounded that mistake by laying cartographic claim to a swathe of territory in the northwest, the Akasi Chin, a claim which was beyond anything the British had ever claimed and on an area which Chinese government had treated as their own for at least one hundred years, To make matters worse, he ruled that there should be no negotiation over that claim either! So Indian policy had created a border dispute and also ruled out the only way it could peacefully be settled, through diplomatic negotiation.

Whatever the truth about the war's origins, it's the effect on India-China relations that is important now... And there was the worry that bringing up the bitterness of the conflict may only make matters worse.

Certainly not, the opposite is true I think. If the Hendereson Brooks Reports is read closely in India (and it's not easy reading!) people will see that political favouritism put the Army under incompetent leadership which blindly followed the Nehru government's provocative policy. It shows that all the way, from formulation to implementation of the Forword Policy, that policy was resisted by the pucca soldiers because they saw it must end in a conflict India could only lose, but the orders came from the top and in the end had to be obeyed....... the authors of the report truefully quote the poem, "theirs not to reason why but to do or die".

What made you publish the report now, and why were you selective about what you published?

There's a significant gap in what published, about 45 pages, otherwise I published all I have, which is Volume I of the Report's two volumes. The gap is there only because the time I had to copy it was limited, and when I saw I wouldn't have time to copy it all I chose to leave out a chunk in the middle rather than the end of it. As for the timing. I'd been trying to make it public for years but thought if I did it myself there'd just be attacks on me rather than concentration on the Report's contents, and to some extent that's what's happening now. So a couple of years ago I made the text available to several major Indian papers on condition they didn't disclose their source, but none of them would publish it, so by this time I had to conclude that if I didn't do it myself it might never see the light of day. Now it's done without any harm whatsoever to national security let's hope the Indian government, this one or the next, will quickly publish both volumes of the Henderson Brooks Report without any gaps or editing.

You may have made matters worse by arousing all this heated discussion just before a general election.

Honesty, the elections never crossed my mind as bearing on my decision, I don't follow Indian politics closely now a days. And as for making matters worse, absolutely not, I see the opposite as being true.

अहिस्ता अहिस्ता!

–डॉ. एस. के. शर्मा
09871520462

अहिस्ता अहिस्ता चल ए ज़िन्दगी,
अभी कई फर्ज़ निभाने बाक़ी हैं,
कई दर्द मिटाने बाक़ी हैं,
कई गिले मिटाने बाक़ी हैं।।1।।
यूँ रफ्तार में तेरे चलने से
कुछ रूँठ गए कुछ छूट गए,
अभी छूटों को पाना बाक़ी है।।2।।
कुछ हसरतें अभी अधूरी हैं,
कुछ काम और ज़रूरी हैं,
अभी जीवन की उलझ पहेली को,
पूरा सुलझाना बाक़ी है।।3।।
न जाने क्या खोया है,
ना जाने क्या पाया है,
मन के जिद्दी बच्चे को
अब बहलाना भर बाकी है।।4।।
अब तक तो नित नित,
मैंने संघर्ष किया है,
अब बैठ चैन से,
ईश्वर को भजना बाक़ी है।।5।।

Date of Pubn. : 30.4.2019   Posted at - NIE-H.O. Postal Date : 2-3 May 2019
RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062   Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2017-2019

कस्त्वा सत्यो मदानां महिष्ठो मत्सदन्धराः।
दृढा चिदारुजे वसु।।   (साम. 683)

ऋषिः- वामदेवः, देवता-इन्द्रः, छन्दः गायत्री

हे मनुष्य! तुम्हारे लिए सबसे सच्चा और सर्वश्रेष्ठ भोजन जो तुम्हें सच्चा आनन्द दे और पापवृत्तियों पर विजय के लिए सक्षम बनाए। वह क्या है? वह है परमात्मा के सत्य को अपने कर्मों से जानना।

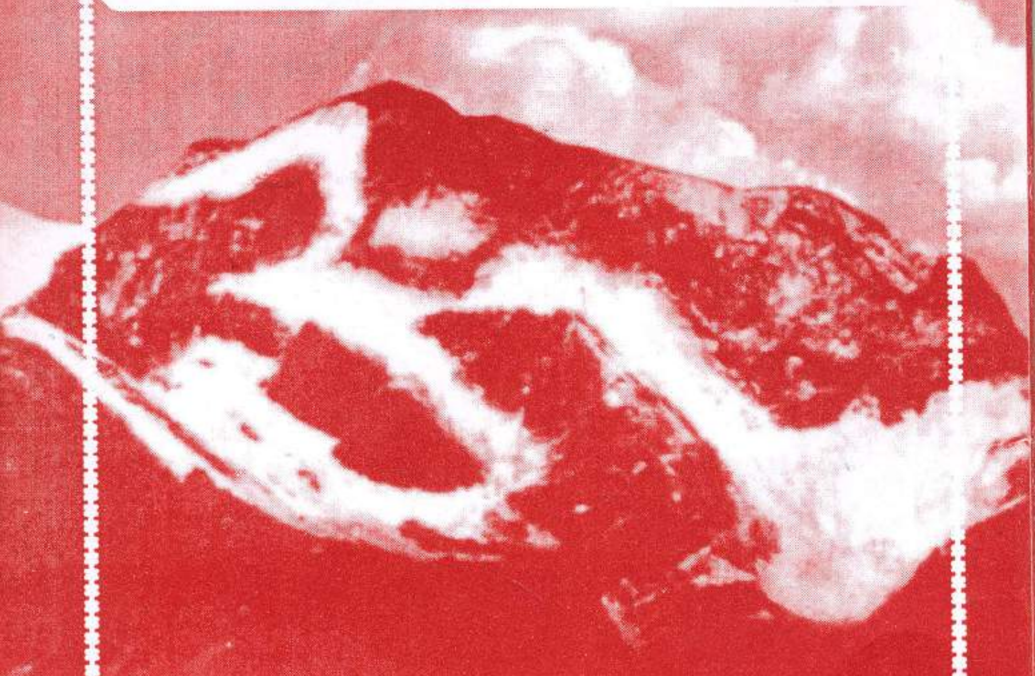

O man, what is the truest and the best food for you, which can get you true happiness and make you capable to win over the evil thought. It is the truth of God, which is to be realised by actions.

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58